ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 133-135

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

भारतीय संयुक्त परिवारों के ह्रास की मीमांसा

प्रकाश प्रपन्न त्रिपाठी
श्री जयेन्द्र सरस्वती वेद पाठशाला, सेठजी का बगीचा–सीतापुर, चित्रकूट (उ0 प्र0), भारत

Received- 23.08.2020, Revised- 27.08.2020, Accepted - 29.08.2020 E-mail: - sanjayckt89@gmail.com

सारांश : ***विश्व की प्राचीनतम एवं श्रेष्ठ भारतीय संस्कृति का आधार भारत का सामाजिक संरचना, खान–पान, साहित्य, संगीत, विद्या जैसे तत्व रहे हैं। हमारी सामाजिक संस्थाओं में परिवार ही वह आधारभूत स्रोत है, जहाँ स्त्री और पुरुष मिलकर लोककल्याणकारी जीवनधारा प्रवाहित करते हैं। साथ ही वंश–बेल का विस्तार होता है और मिलकर समस्त क्रियाओं का सम्पादन करते हैं इसीलिए मनु ने कहा – 'या भर्ता सा स्मृताङ्गना,' अर्थात स्त्री और पुरुष भेद रहित हैं।[1] यद्यपि दोनों के स्वभाव एवं शारीरिक सौश्ठव में व्यापक प्रतिकूलता है। एक आग्नेय है तो दूसरा सौम्य, एक दृढ़ है तो दूसरा सुकुमार किंतु दोनों एक ही तंत्र के ताने–बाने हैं। भारतवर्ष में इसी को सनातन कहा गया है।[2] यहीं सदाचार के सम्बल से आदर्श परिवार पनपता है।आध्यात्मिक दृश्टि से परिवार का मूल ताना–बाना धर्म आवेष्टित है। जहां इसमें टूटन आती है, वहीं परिवार के सदस्यों में सदाचार और कर्म के आदर्श एवं मूल्यों के प्रति आस्था में गिरावट आने लगती है। ऐसे में परिवार टूटने लगते हैं।***

कुंजीभूत शब्द– प्राचीनतम, भारतीय संस्कृति, आधार, सामाजिक संरचना, खान–पान, साहित्य, संगीत, विद्या ।

भारत में प्राचीन काल से ही परिवारों से तात्पर्य संयुक्त परिवारों से रहा है। मैक्समूलर ने 'संयुक्त परिवारों को भारत की आदि परम्परा'[3] कहा है। यद्यपि हमारे वैदिक वाङ्गमय में संयुक्त परिवारों के विविध रूप मिलते हैं, तथापि उनमें समानता, पीढ़ियों के साहचर्य का रहा है। ऐसे परिवारोंमें लोग संयुक्त रूप से रहकर अपने दायित्वों का निर्वाह करते हैं। इसे ही 'संयुक्त परिवार' कहा जाता है। रामायण में राजा दशरथ एवं जनक के परिवार जीवन इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

विश्व की अन्य सभ्यताओं में सामान्यतः व्यक्तिवादी परिवार परम्परा देखने को मिलती है, जहां केवल पति–पत्नी एवं उनकी अविवाहित संताने ही परिवार के सदस्य होते हैं। क्योंकि वहां सामाजिक चिंतकों ने परिवार स्थापना में यौन संबंधों की पूर्ति और संतानों के पालन पोषण को विशेष महत्व देकर, इसे औपचारिक एवं व्यक्तिवादी आधार दिया। इसके विपरीत भारतीय परिवार, मानव जीवन के चरम उद्देश पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति में सहायक होने के साथ, अनेक पीढ़ियों के रक्त संबंधियों के द्वारा संयुक्त रुप से रहकर पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति कर रहा है।

वर्तमान में भारतीय परिवारों में महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन आये हैं, निरंतर परिवार का आकार सूक्ष्म हो रहा है। तथापि वे भी संयुक्त परिवार परम्परा के आदर्शों से अधिक दूर नहीं जा सके हैं। डॉ0 इरावर्ती कार्वे के इस कथन से स्पष्ट है–"संयुक्त परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो एक ही घर में रहते हैं, एक ही स्थान पर बना भोजन करते हैं, सामान्यतः पूजा में भाग लेते हैं, और किसी न किसी प्रकार रक्त सम्बन्ध द्वारा आपस में बँधे रहते हैं।"[4] आज संयुक्त परिवारों के लोग नौकरी या अर्थार्जन हेतु परिवार को छोड़कर दूर–देश चले जाते हैं, यहाँ तक स्वयं, पत्नी और बच्चों के साथ वहाँ निवास करने लगते हैं,परन्तु परिवार में आयोजित विशेष उत्सव, त्यौहारों आदि अवसरों पर एकत्रित होकर उसे पूर्ण करने में अपना महत्वपूर्ण सहयोग निभाते हैं।

'समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।'[5] इस कथनावलोक में जिन सम्बन्धों से समाज की सर्जना सुनिश्चित होती है, उसमें नैतिकता, सदाचार, और त्याग का दृढ़ आधार होता है। जहाँ सम्बन्ध निर्भय होकर आदर्श रूप में फलते–फूलते हैं। इसके आधार में परिवार ही तो है जिसे कुटुम्ब भी कहा जाता है। मेक्लवर एवं पेंग ने कुटुम्ब, की प्रतिष्ठा में कहा है कि,"कुटुम्ब, समाज, के पूर्णाष को प्रभावित करता है। कुटुम्ब में थोड़ा सा भी परिवर्तन समाज की स्थिति को परिवर्तित कर देता है।"[6] इससे संयुक्त परिवारों की उपयोगिता एवं समाज निर्माण में महत्व सार्वकालिक रुप में स्पष्ट होता है।

पाश्चात्य की हम बात करें तो रूस का उदाहरण हमारे समक्ष है। वर्गवादी क्रान्ति के पश्चात् वहां धाय–घर खोले गयें, परन्तु यह असफल प्रयास सिद्ध हुआ। रूस में इस की विफलता पर वर्गेस और लॉक ने माना कि"रूस, कौटुम्बिक भावना और माता–पिता के आन्तरिक प्रेम को समाप्त करने में असमर्थ रहा।"[7] इस विफलता का कारण

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

अप्राकृतिक एवं अमनोवैज्ञानिक मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित रूसी क्रान्ति थी। अन्त में यह सिद्ध हुआ कि परिवार या कुटुम्ब, मानव स्वभाव एवं प्रकृति का परिणाम है, जिसे विकृत तो किया जा सकता है परन्तु समाप्त नहीं। संयुक्त परिवारों की आवश्यकता एवं महत्वपूर्ण संस्था के रूप में स्वीकार करते हुए हेलेनबोसांके ने लिखा कि–'विश्व बिना कुटुम्ब के उसी प्रकार होगा, जैसे–बिना सूर्य के आकाश। सूर्य, बादल से ढँका जा सकता है, कुटुम्ब व्यवस्था की दिवाल हिल सकती है, किन्तु उसका अभाव असम्भव है।'[8]

अतः कुटुम्ब या परिवार समाज की प्राथमिक अनिवार्य संस्था है, जहाँ मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है तथा परिवार के रूप में वह समाज का सदस्य बनता है। समाज का ही अंग राज्य है, जो शिक्षा, धर्म, एवं अर्थ को स्वायत्त बना सकता है, परन्तु सन्तति जनन एवं विस्तार, गृहस्थ जीवन एवं स्वभाविक प्रेम का विकास तो परिवारों में ही सम्भव है। भारतीय परिवार, समाज काऐसा ताना–बाना है जहाँ मनुष्य मानसिक एवं भौतिक रूप से निश्चित लक्ष्यों तथा प्रभावशाली प्रयोगों द्वारा गाम्भीर्य एवं वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। विवाह पश्चात् वर–वधु स्वतःही अपनी जिम्मेदारी को समझकर गार्हस्थ–कर्तव्यों का निर्वहन करने लगते हैं। विवाह सूक्त में आया है कि नवविवाहिता वधू अपने पति के घर में सास–ससुर, देवर–ननद आदि सम्बन्धियों के ऊपर अधिकार रखने वाली साम्राज्ञी बन जाती है,[9] साथ ही परिवार में रहकर, वह कुलविधियों, आदर्शों एवं सदचारों का पालन करती है।

वर्तमान भौतिकवादी युग में भारतीय परिवार तेजी से बिखर रहे हैं। पूर्व में जहाँ, पीढ़ियों के रक्त–संबंधी जन एक छत के ही नीचे रहकर, एक ही रसोई में भोजन करते थे, माता–पिता, चाचा–चाची, पितामह–पितामही, भाई–भाभी, भतीजे–भतीजियाँ सब एक साथ आनन्दपूर्वकहर परिस्थिति में रहते थे।अतः ये परिवार केवल पिता और उनकी संतानों तक सीमित नहीं था, अपितु जहां तक निभ जाए, वहाँ तक चलाना चाहिए पर आधारित था। अंचलों में पति–पत्नी के संबंधों के विषय में तो यहां तक कहा गया है कि यह संबंध सात जन्मों का और उससे भी आगे जन्म–जन्मांतर का होता है। वहीं आज संयुक्त परिवार की अवधारणा मिथकीय बनती जा रही है। हमारी दृष्टि में संयुक्त परिवारों के विघटन के कुछ प्रमुख कारण इन रूपों में दृष्टिगत होते हैं–

सनातन–संस्कृति, समय–समय पर संक्रमित होती रही है।औद्योगिक क्रांति, भौतिक विज्ञानों के विकास, आर्थिक समाजवाद आदि ने संपूर्ण सनातन–संस्कृति को नींव से हिला दिया। जहां परिवारों में कर्तव्यबोध, नैतिकता, स्वार्थपरता, निजता एवं अहमन्यता ने अपने पैर पसार लिए, परिणामस्वरुप संयुक्त परिवार टूटने लगे।

हम भारतीय, अपने परिवार के प्रति कर्तव्यों से च्युत हुए हैं परंतु अधिकार हमें अपेक्षित हैं। आज तो सम्पत्ति के मसले में परिवार के अधिकांष सदस्यों को कोर्ट–कचहरी में प्रायः देखा जा सकता है। सभी मालिक बनने की चाहत रखते हैं, आदेश पालक कोई नहीं। अहंकार इतना बढ़ गया है कि छोटी सी बात पर गाँठ बन लेना फिर मारपीट, यहाँ तक कि कत्लेआम की घटनाएँ भी देखने में आ रही हैं। माँ–बाप, दादा–दादी आदि उपेक्षा के शिकार हो रहे हैं।

अतः स्पष्ट है कि भारत में परिवार से आशय संयुक्त परिवारों से था, आज वह सांस्कृतिक संकरण के कारण पाश्चात्य अवधारणा से साम्य रखने लगा है। बड़े–बुजुर्गों को, चाहे स्त्री हो या पुरुष, सब का सम्मान न्यून से न्यूनतर हो गया है। सरकारों की भी इसमें विशिष्ट भूमिका है। आज 'हम दो हमारे दो' की उक्ति ने भी हमारे मनःस्थिति को विपरीत रूप में प्रभावित किया है। समाज कल्याण के नाम पर वृद्धाश्रम एवं विधवाश्रम जैसी संस्थाएं संयुक्त परिवारों की ओर कुटिल हास कर रही हैं। परिवार में सुख–सुविधाएँ आत्म केंद्रित हो चुकी हैं।

आज आवश्यकता है कि अपने अहम् एवं मान–अपमान के भाव को समाप्त कर परिवार के प्रति समर्पित कर्तव्य भाव से प्रेमपूर्वक सहायक बने। अपना और पराया का भेदभाव समाप्त कर समता का भाव रखें। परिवार के हर सदस्य का कर्तव्य है कि परिवार में नवागत वधू को परिवार की परंपराओं एवं मर्यादाओं के प्रति जागरुक एवं निष्ठावान् बनाने का वैचारिक उद्यम् करें। संस्कारों आदि को सामाजिक रुप से महत्त्व दिया जाय। बहुविधि परिवार की उन्नति,रक्षण, विश्वास एवं आपसी सहयोग तथा संलग्नता का उद्यम करें। क्योंकि परिवार से हम हैं। आज समाज की जो विभाषिका बनी हुई है, उन्हें समाप्त करने में संयुक्त परिवार विशिष्ट रूप से सहायक हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मनुस्मृति, टीकाकर–डॉ0 राजेन्द्र उपाध्याय, पृ0 296, 9/45.
2. 'हिन्दू परिवार मीमांसा' की भूमिका, लेखक वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ0 26.
3. भारतीय सामाजिक संस्थाएं, लेखक डॉ0 गोपालकृष्ण अग्रवाल, पृ0 298.
4. Kinship Organization in India, by Dr. Iravati Karve, पृ0 10.

5. समाजिक विज्ञान भाग–1, लेखक डॉ महेश भटनागर, पृ. 293.
6. भारतीय विचार धारा, लेखक हरिहरनाथ त्रिपाठी, पृ. 273–74.
7. भारतीय विचार धारा, लेखक हरिहरनाथ त्रिपाठी, पृ. 274.
8. भारतीय विचार धारा, लेखक हरिहरनाथ त्रिपाठी, पृ. 274.
9. भारत की संस्कृति, लेखक डॉ0 कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव, पृ0 68 .

*****

संदर्भ ग्रन्थ सूची